षष्ठ अध्याय

माया स्वरूप विवेचन

माया विवेचन

भारतीय दर्शन शास्त्र में माया, जगत् व सृष्टि अध्यस्त तत्व माने गये है । अध्यस्त अर्थात् आरोपित, इन्हें आरोपित तत्व इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह ब्रह्म पर आरोपित की गई है । वस्तु में अवस्तु का अध्यास या आरोप ही अध्यस्त है ।[1] ब्रह्म वस्तु रूप है और उसमें अवस्तुरूप जगत् आदि उसी प्रकार आरोपित किया जाता है जिस प्रकार शुक्ति में रजत एवं रज्जु में सर्प आरोपित है । अध्यारोप की इस क्रिया का मूल अज्ञान है । अज्ञान की निवृत्ति होने पर इनका दर्शन नहीं होता अपितु सर्व अखण्ड ब्रह्म ब्रह्म-मात्र की ही सत्ता शेष रहती है ।[2]

मायावाद की परम्परा

ऋग्वेद में माया का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है । वहाँ "माया" शब्द रूप बदलने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।[3]

उपनिषदों में माया का प्रयोग नाम रूप बदलने के अर्थ में हुआ है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया को प्रकृति और महेश्वर को माया पति कहा गया है ।[4] और यही महेश्वर मायावी सृष्टि का स्रष्टा है और दूसरा जीव माया के द्वारा बंधा हुआ है ।[5]

---

1. वस्तुन्यवस्त्वारोपोऽध्यारोपः । वेदांत सार - 6
2. डा० राममूर्ति शर्मा - वेदान्तसार - पृ० xxxii
3. इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते । - ऋग्वेद - 6/47/18
4. माया तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्
   तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् । - श्वेता - उप०-4/10
5. अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्
   तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः । वही - 4/9

उपनिषदों में माया को नश्वर बताया गया है और इस माया को भोगनेवाला जीवात्मा अमृतस्वरूप है । दोनों को ईश्वर अपने नियंत्रण में रखता है ।[1] इस प्रकार उपनिषदों में वर्णित माया ईश्वर की अधीनस्थ शक्ति है, जिसके द्वारा वह सृष्टि का सृजन करता है । अतः माया स्वतन्त्र नहीं ।

गीता में भी माया को ईश्वर की अभिन्न शक्ति माना है । यह योग माया ब्रह्म की अनादिशक्ति है जिससे ब्रह्म आच्छादित है । इसी माया के कारण अज्ञानी पुरुष उस अज और अव्यय तत्त्व को नहीं समझते ।[2] यह अलौकिक तथा सत्वरजतमोगुण मयी होने से दुस्तर है ।[3] अविनाशी जीवात्मा को यही त्रिगुणात्मिका माया शरीर के बन्धन में जकड़ देती है ।[4] अतः भगवान् कृष्ण कहते है कि भगवद्भजन से ही उससे मुक्त हो सकते है ।[5]

इस प्रकार गीता में माया को ब्रह्म की अनादि शक्ति, जीव के बन्धन का कारण, त्रिगुणात्मिका व ब्रह्म की चराचर को उत्पन्न करनेवाली क्रियाशक्ति कहा है ।

---

1. देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् - श्वेताश्वतरोपनिषद् 1.3

2. नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥
गीता - अ-7 - श्लो - 25

3. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
गीता - अ-7 श्लो - 14

4. सत्वरजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥
गीता - अ-14 श्लो-5

5. मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।
गीता - अ-7 2-4

उपनिषदों व गीता के आधार पर ही शंकराचार्य के मायावाद का विकास हुआ । डा० थीबो ने शंकर के मायावाद को औपनिषदीय माया का स्वाभाविक विकास माना है । जिसे शंकर ने निर्गुण ब्रह्म के रूप में विकसित किया और सगुण भक्तों ने उसी को सगुण ब्रह्म के अर्थ में लिया ।[1]

आचार्य शंकर के अद्वैतवाद का मूल मायावाद ही है । वे इस माया का दूसरा नाम अविद्या देते है । उसे ही जगत् की उत्पत्ति का कारण मानते हुए उसे अव्यक्त, नामधारी, त्रिगुणात्मिका, अनादि, अविद्या और परमेश्वर की पराशक्ति मानते है । इसी से जगत् उत्पन्न हुआ पर बुद्धिमान जन ही इसके कार्य से इसका अनुमान करते है ।[2] माया सत् नहीं, क्योंकि ब्रह्म-ज्ञान होते ही माया की कोई सत्ता नहीं रह जाती ।[3] माया मूल रूप में अव्यक्त होने से आ० शंकर ने उसे अनिर्वचनीय कहा है ।[4] अतः उन्होंने "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या"[5] का घोष लगाते हुए परमार्थतः ब्रह्म को सत्य व माया के कारण उसे भिन्न प्रतीत होनेवाले जगत् को मिथ्या कहा । उसे व्यावहारिक दृष्टि से सत्य माना है ।

रामानुजाचार्य माया को नहीं मानते उनकी दृष्टि में पारमार्थिक व व्यावहारिक भेद नाम की कोई चीज नहीं अतः उनके मत में ईश्वर, जीव, जगत् तीनों ही सत्य है ।

- -

1. डा० नारायण प्रसाद वाजपेयी -
   भक्ति काव्य की दार्शनिक चेतना - पृ० 41
2. अव्यक्त नाम्नी परमेशशक्तिर् अनाद्यविद्या
   त्रिगुणात्मिका परा कार्यानुमेया सुधियैव
   माया यया जगत् सर्वमिदं प्रसूयते ।
   श्री शंकराचार्य - विवेक चूडामणि - श्लोक - 110
3. - वही - 111

माया के इस स्वरूप विवेचन के अनुसार अविद्या, अज्ञान, मिथ्याज्ञान, नाम-रूपात्मक जगत् आदि शब्दों का प्रयोग माया के अर्थ में होता है ।

माया का स्वरूप

शास्त्र प्रतिपादित माया के दो रूप हैं - विद्या माया और अविद्या माया । अविद्या से आवागमन का बन्धन व विद्या से अमृत की प्राप्ति होती है ।[1] सन्त कबीर और नामदेव दोनों ने अविद्या माया को ही अधिक प्रधानता दी है । सन्तों ने विद्या और अविद्या की चर्चा "ज्ञान" और "अज्ञान" शब्दों द्वारा की है ।

(क) ब्रह्म की सबल भ्रामक शक्ति ✓

नामदेव ने माया को स्पष्ट शब्दों में ब्रह्म की सबल भ्रामक शक्ति माना है वह स्वतन्त्र नहीं है । वह ब्रह्म की अधीनस्थ शक्ति है पर दोनों में अत्यन्त विरोध है वे दोनों साथ साथ नहीं रह सकते । अतः माया के भीतर ब्रह्म का दर्शन नहीं हो सकता और ब्रह्म के सामने माया अदृश्य हो जाती है ।[2] जब और इसी माया मोह के भ्रम में समस्त संसार भटक रहा है, भ्रम के भुलावे में पड़ा हुआ है ।[3] सम्पूर्ण जगत् में इसी "झूठी माया" का प्रसार है ।[4] उन्होंने माया को ही "झूठी माया" कहा है क्योंकि यही झूठी माया भक्तों को

- -

1. अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते । - ईशोपनिषद - 9/11
2. कीहीं तेरी सबल माया । आगे हनि अनेक भरमाया ।
   माया के अन्तर ब्रह्म न दीसै । ब्रह्म के अन्तर माया नहीं दीसै ।
   स॰ ना॰ हि॰ प॰ = पद- 39
3. माया मोह करि जगत् भुलाया । - वही पद-48
4. अकेले आना अकेले जाना, सब झूठी माया पसरी जू ।
   वही पद - 192

भगवान से मिलने नहीं देती ।[1] और इस भ्रम की निवृत्ति ज्ञान द्वारा ही सहज रूप में होती है ।[2]

"यु माया रघुनाथ की खेलण चली अहेड"

कबीर भी अविद्या माया को "रघुनाथ की माया" कह उसे ब्रह्माश्रित मानते है । वह तो संसार का शिकार खेलने चली है ।[3] इसी "झूठी माया" से सारा संसार बद्ध है ।[4] यह "माया ब्रह्म" सदा सबके संगी है ।[5] अर्थात माया ब्रह्म अभिन्न है । सारा जगत माया मोह के भ्रम में पड़ा हुआ "खसम" राम को नहीं पहचानता ।[6] कबीर स्पष्ट शब्दों में उसे मिथ्या कह तजने का उपदेश देते हैं । तभी "सहज-सुख" की प्राप्ति होगी ।[7] क्योंकि ज्ञान की आँधी से भ्रम की निवृत्ति हो सम्पूर्ण अज्ञान समाप्त हो जाता है और मनुष्य माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।[8]

इस प्रकार दोनों ही कवि माया को ब्रह्म की सबल भ्रामक शक्ति मानते हुए नामदेव ने उसे ब्रह्म की दासी कहा है और नाटी[9], नटनी[10]

---

1. माधौ जी माया मिलन न देई ।
डा॰मिश्र व मौर्य - स॰ना॰हि॰प॰ - पद- 109
2. ग्यान सरोवर मंजन मंज्या, सहजे छूटिले भरमा । -वही, पद- 116
3. कबीर ग्रन्थावली, पद- 187
4. झूठी माया सब जग बाँध्या । -- वही, पद- 266
5. माया ब्रह्म रमै सब संग । - वही, परिशिष्ट- पद 134
6. ले तो माया मोह भुलाना, खसम राम सो किनहूं न जाना ।
- वही, सप्तपदी रमैनी - पृ॰ 228
7. मिथ्या करि माया तजी सुख सहज बिचार कहि कबीर ।
- वही - परिशिष्ट, पद 205
8. सन्तो भाई आइ ग्यान की आँधी
भ्रम की टाटी सबै उडाणी, माया रहै न बाँधी । -वही- पद, 16
9. रामदेव तेरी दासी माया । नाटी कपट कीन्हा ।
स॰ना॰हि॰प॰ = पद-52
10. देवा नटणी को तनमन बासा बरता माहि रे ।
-- वही, पद-71

ठग[1], डाइन[2] आदि विशेषणों द्वारा उसके भ्रामक रूप को ही बतलाना चाहा है। कबीर ने माया के इसी भ्रामकशक्ति का समर्थन उसे महाठगिनी[3], डाकिनी[4], मोहिनी[5], नकटी[6], पापिनी[7], डोलनी[8], चोरटी[9] विशेषणों द्वारा किया है। कबीर के माया सम्बन्धी विस्तृत विचार "माया कौ अंग" में संकलित साखियों और अनेक पदों में अभिव्यक्त हुए हैं।

[आ] त्रिगुणात्मिका

सन्त नामदेव जीव में पाँच महाभूत, त्रिगुण [सत्व, रज तम] और उससे भिन्न "अष्टधा" प्रकृति है इन सब को "वैगी माया" कहते हैं। यही माया जीव को चौरासी लक्ष योनियों में अटकाती है, भटकाती है।[10]

- -

1. ठाइ रे मन विषिया बन जाहि। देखत ही ठगमूरी खाहि ।।
   स॰ना॰हि॰प॰ = पद-62
2. डाइन डिंभ सकल जग खाया। - वही - पद- 43
3. माया महाठगिनी हम जानी - कबीर वाणी, पद- 34
4. कबीर माया डाकणी, सब किसी कौं खाई। क॰ग्रं॰, माया कौ अंग-सा॰21
5. कबीर माया मोहनी, मोहे जाण सुजाण।
   - वही - माया कौ अंग = सा॰ 6
6. सकल माहि नकटी का वासा सकल मारि वौ हेरी। - वही - पद-20
7. कबीर माया पापणी फंध लें बैठी हाटि - वही -
   माया कौ अंग, सा- 2
8. कबीर माया डोलणी पवन झकोलनहार - वही - परिशिष्ट- दोहा 111
9. कबीर माया चोरटी मुसि मुसि लावै हाटि।
   - वही - परिशिष्ट - दोहा - 113
10. पाँच महाभूत, गुण त्रिविधा। तामें भिन्न प्रकृति अष्टधा।
    नामदेव भण वैगी माया। चौरासी लख भर माया।
    -- सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद-181

वेणु या मुरली से सम्बन्धित "वेणी" अर्थात् मोहिनी माया नामदेव का विशिष्ट प्रयोग प्रतीत होता है और "तामें भीन्न प्रकृति अष्टधा" गीता के इस श्लोक का स्मरण दिलाती है ।[1] त्रिगुणात्मिका माया सभी ब्राह्मण में सारे संसार को अपने माया पाशमें बांधा हुआ है ।[2] नामदेव का माया सम्बन्धी दृष्टिकोण गीता से अधिक प्रभावित जान पड़ता है । नामदेव जीव का गर्भयोनि में आने को माया कहते हैं ।[3]

सन्त कबीर भी उसी पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करते हुए पंचतत्व, तीन गुणों से निर्मित, अष्टधा प्रकृति को माया कहते हुए स्पष्ट शब्दों में जन्म में उत्पत्ति और विनाशधर्मी सभी वस्तुओं को भ्रम की माया कहते हैं ।[4] यह माया त्रिगुणात्मिका व प्रसवधर्मिणी है ।[5]

---

1. भूमिरापो नलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
   अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।
   श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय - 7 श्लो- 4
2. नामदेव भेभे जबु रवि गुन बांधा ।
   ब्राह्मन त्रिभ सकल जग बांधा ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पृ- 43
3. माधवा नामु गरभ जोनि का तिहि तजि दरसन पावउ । -वही- पद 201
4. पाँच तत्त तीनि गुण जुगति करि सम्वारी ।
   अष्ट बिन होत नहीं क्रम काया ।
   पाप पुन बीज अंकुर जामै मरै,
   उपजि बिनसै जेती सर्व माया ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद 199
5. सत रज तम थैं कीन्ही माया, चौरि खानि विस्तार उपाया ।
   वही-सतपदी रमैणी - पृ• 229

व्यापकता

सृष्टि के सारे पदार्थ मायामय है । अतः दोनों ही कवियों ने माया की व्यापकता का वर्णन किया है । सन्त कबीर ने उसकी व्यापकता का वर्णन बड़े विस्तार से किया है । माया ही आदर मान, जप, तप, जोग, जल थल आकाश है । माया ही सर्वत्र व्याप्त है । माता, पिता, स्त्री, सुत अतिमाया है । इस व्यापक माया को मारने का उपदेश कबीर देते है ।[1] इसीलिए कबीर "राम निरंजन न्यारा, अंजन सकल पसारा रे" अंजन अर्थात् माया को ही सर्वत्र प्रसृत कहते है ।[2]

नामदेव उसकी व्यापकता को इन शब्दों द्वारा व्यक्त करते हैं ।

"रामदेव तेरी दासी माया, नाही कपट कीन्हा
थावरजंगम जीत लिया है, बाधा पर नहीं चीन्हा ।[3]

अर्थात् ब्रह्म की दासी माया भक्त और भगवान् के मिलन में बाधक है । और उसने जड़ चेतन सभी को अपने वश में किया हुआ है ।

कबीर के शब्दों में इस भाव को निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्ति मिली है ।

"कीड़ी कुंजर में रही समाई,
तीनि लोक जीत्या माया किन्हू न खाई ।[4]

---

1. माया आदर माया मान, माया नहीं तहाँ ब्रह्मगियान ।
माया रस माया कर जान, माया कारनि तजै परान ।
माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सबहि लोग ।
माया जलथलि माया आकास, माया व्यापि रही चहुं पासि ।
माया पिता माया माता, अतिमाया अस्तरी सुता ।
माया मारि करै व्यवहार, कहै कबीर मेरा अधार । क॰ग्रं॰ – पृ॰ 84
2. – वही – पद 336
3. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली – पद – 52
4. कबीर ग्रन्थावली – पद 232

में व्याप्त कीड़ी से कुंजर पर्यन्त सभी में व्याप्त माया ने तीनों लोकों को जीत लिया है। उसे कोई समाप्त नहीं कर सका। वह "हरि सूं हराम करनेवाली" वह पापणी माया राम नहीं कहने देती।[1]

इस व्यापक माया का स्वभाव आकर्षणशील है।

आकर्षणशीलता

नामदेव और दोनों ही माया की आकर्षणशीलता का प्रतिपादन करते है। नामदेव कहते हैं कि माया के चित्रविचित्र रूप से सभी विमोहित होते है कोई विरला ही उसे समझ सकता है क्योंकि वह अत्यन्त रहस्यमयी है, अतः इसे अनिर्वचनीय कहा जाता है, नामदेव "विरला बूझे कोई" कह उसे अनिर्वचनीय कहाते है। वह बूझी जाती है, अनुभूत की जाती है, पर देखी नहीं। पर उसके स्वाभाविक सम्मोहन से सहजरूप से सभी सम्मोहित होते है।[2] उसके आकर्षण से छूटना कठिन है। वह एक बार आकर जाना नहीं चाहती।[3]

कबीर ने उसकी सम्मोहन शक्ति को "मोहनी" शब्द द्वारा अनेक साखियों में व्यक्त किया है।[4] इसके अतिरिक्त दीपक के रूपक द्वारा।[5] उसकी आकर्षणशीलता को बड़े सुन्दर ढंग से संक्षेप में समझाया है।

---

1. कबीर माया पापणी, हरि सूं करे हराम।
   मुख कडियाली कुमति की, कहण न देई राम।
   कबीर ग्रन्थावली - माया को अंग - साखी - 4
2. माइआ चित्रविचित्र विमोहित, विरला बूझै कोई।
   सं० ना० हि० प = पद - 150
3. कंजन आय जाय न भावै। - वही, पद- 134
4. क - कबीर माया मोहनी जैसी मीठी खांड।
   ख - कबीर माया मोहनी मोहे जांण सुजांण।
   ग - कबीर माया मोहनी सब जग घाल्या घाणि।
   कबीर ग्र० = माया को अंग सा० 7,6,5
5. माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पडन्त।
   कहै कबीर गुरु ग्यान तै, एक आध उबरन्त।
   कबीर ग्रन्था० गुरुदेव को अंग - सा० 19

माया रूपी दीपक तरफ नर रूपी पतंग स्वाभाविक रूप से आकर्षित होते हैं। उस आकर्षण से विरला ही बच सकता है ।[1] इस तरह दोनों के मत में माया ब्रह्म की भ्रामक शक्ति, व्यापक व आकर्षणशील है ।

माया का बेली रूप में वर्णन

शून्यवादियों के समान नामदेव और कबीर ने माया रूपी बेली को विरोधात्मक गुणों से युक्त माना है ।

नामदेव अवधू को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे अवधू ! मेरे मन में ज्ञानरूपी बेली की वृद्धि कर और माया रूपी बेली को दूर कर दे क्योंकि इस शुभ गुणों से हीन माया लता ने आकर जीव के भीतर निवास करनेवाले निरंजन ब्रह्म को घेर लिया है । यह माया मारने पर भी नष्ट नहीं होती । इस माया लता से जकड़ा जीव ब्रह्म से अलग और असंस्पृष्ट हो गया है । इस माया रूपी बेली को मारने के लिए सतगुरु ने सहज समाधि का मार्ग बताया है ।[2]

"निरगुण जाइ निरंजन लागी" अर्थात् निर्गुण निरंजन से युक्त हो गया है । इन पंक्तियों में नामदेव का निर्गुणी और निरंजनी सम्प्रदायों की ओर संकेत है, क्योंकि अपने ह्रास के युगों में दोनों सम्प्रदाय मायाग्रस्त हो गये थे । वास्तव में निर्गुणी व निरंजनी सम्प्रदाय मायालता को काटने के लिए बने थे पर वे स्वयं इस लता के बन्धन में जकड़ गये ।

---

1. कंचन आइ जाइ न भावै ।
   संत नामदेव की हिन्दी पदावली - पद 134
2. अवधू बेली विरधि करेली
   निरगुण जाइ निरंजन लागी । मारीयु न मरेली ।
   सहज समाधि वाडी रे अवधू । सतगुरु थापी बेली ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद - 97

"बेली को अंग" की साखियों में कबीर के तत्सम्बन्धी विचारों का परिचय मिलता है । कबीर के पदों में उपरोक्त भाव इस प्रकार ध्वनित हुआ है ।

कबीर माया रूपी लता को विरोधी और विचित्र गुणोंवाली मानते हैं, वह काटने पर भी पल्लवित होती है । वह भोग से बढ़ती है, इन्द्रियों के कुल्हाड़े से काटने पर भी पल्लवित होती है पर प्रभुभक्ति के जल से सींचने पर कुम्हला जाती है इस "गुणवन्ती बेलि" के गुण अनिर्वचनीय है ।[1] यह कड़वी बेली है इसका फल भी कड़वा ही होगा अतः उस बेली से सम्बन्ध-विच्छेद कर ही प्रभु प्राप्ति होगी ।[2]

माया और मन

माया का निवास स्थान मन ही है, अतः मन का माया से घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

मत अध्यायों में आत्मा और मन सम्बन्धी विवेचन में मन के दो रूपों का उल्लेख किया है । मन या मायासक्त मन व उन्मन । इसमें मायासक्त मन ही जीवों के संसारबन्धन का कारण है । अतः सन्तों और भक्तों ने इसी मन को वशीभूत करने का उपदेश दिया । मन की चंचलता का विस्तार से वर्णन करते हुए मानव मात्र को बार-बार प्रबुद्ध किया है ।

इस आसक्त मन का स्वरूप वर्णन करते हुए नामदेव काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर सभी षड्विकारों को मन का संगी कहते हैं ।

---

1. जै काटौं तौ डहडही, सींचौं तौ कुम्हिलाइ ।
   इस गुणवंती बेलि का, कुछ गुण कह्या न जाइ ।।
   कबीर ग्रन्था. बेली कौ अंग – सा. 3
2. कबीर कड़ई बेलड़ी, कड़वा ही फल होइ ।
   साध नांव तब पाइये, जे बेलि बिछोहा होइ ।
   – वही – सा. 5

और उसे ठग कहते हुए मन को चेतावनी देते हैं कि विषय रूपी वन में प्रवेश करने से तेरा जीवन काम, क्रोध, तृष्णा की अग्नि में जलता रहेगा, कनक कामिनी के मोह में बन्धा हुआ मन तुझे नरक में ले जायेगा । अतः विषयों रूपी वन में मत जा ।[1] "माधो जी माया मिलन न देई" कह नामदेव इस माया को परमात्म-मिलन में बाधक कहते हैं, उस मन और माया सम्बन्ध ही जलधर और मछली के समान है । यह मन रूपी मछली उस माया रूपी नीर की प्यासी है ।[2] और यह मदमस्त चंचल मन किसी की नहीं सुनता, भक्तिरूपी अमृत को छोड़ विषयरूपी विष को ग्रहण करता है ।[3] यह मन सदा माया से ही तृप्त होता है । यह अपनी मनमानी ही करता है ।

- -

1. काहे रे मन विषया बन जाहि । देखत ही ठग मूरीखाहि
जिभ्या स्वारथ मिशल्योहि । कनक कामिनी बांध्यो मोह
माया काज बहुत कर्म करै । सो माया ले कूढे धरै ।
अति अग्यान जाने नहीं मूढ । धन धरती अपला भयो कूढ ।
कहि काम क्रोध त्रिस्ना अति जरै । साध संगति कबहू नहि करै ।
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद- 62

2. माधो जी, माया मिलन न देई ।
जन जीवै सो करै सनेही ।
माया जलधर, मीन मन पंछी ।
नीर बिना क्यों जीवै हो पियासी ।
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 109

3. माधो जी कहा करूं या मन कौ
मन मैमन्त नहीं बस मेरो, हरजत हारयो दिन ।
अमृत छोडि विष क्यूं ल्यावै करत आप मनि भाया ।
कहे सुने को कहुन माने अनेक बार समझायो ।
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद - 175

सन्त कबीर भी इन मनोविकारों को डाइन रूपी माया के लड़के[1] कह मनुष्यमात्र को स्मरण दिलाते है कि कनक कामिनी भी माया के रूप है उनके फन्दे से बचो ।[2] वे जीव को सावधान करते हैं कि उस मन की इच्छानुसार मत चल उसका अनुगामी मत बन क्योंकि उस मन के मत हजार है[3] क्योंकि मन के जीतनेवालों की जीत होती है और हारनेवालों की हार ।[4]

सन्त कबीर भी इस मन को मदमस्त हाथी के उदाहरण द्वारा समझाते है कि इस मदमस्त हाथी रूपी माया को हृदय के भीतर ही घेरकर वश में कर ले और जब कभी यह मन हार से विमुख होने का प्रयत्न करे तो उसे अंकुश मार कर नियंत्रण में रख ।[5]

अतः दोनों ही इस मायासक्त चंचल मन को "निश्चल" अर्थात् स्थिर करने का उपदेश देते है । नामदेव निश्चल भाव से राम का स्मरण करने का उपदेश देते है तभी एकाध हरिजन का उद्धार होता है ।[6] कबीर पूर्ण विश्वास से कहते है कि चंचल चित्त को निश्चल करने से ही राम रसायन पीया जा सकता है ।[7] मन की निश्चल अवस्था ही तो उन्मनी अवस्था है,

- -

1. इक डाइन मेरे मन में बसै रे, नित उठि मेरे जीय कौं डसै रे
   या डाइन्य के लरिका पांच रे, निसिदिन मोहि नचावै नाच रे ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद - 236
2. एक कनक अरु कामनी, जग में दोइ फन्दा ।
   कबीर ग्रन्थावली, पद- 188
3. मन के मतै न चालिये मन के मतै हजार
   - वही - मन कौ अंग - सा ।
4. मन के जीते जीत है, मन के हारे हार ।
   - वही -
5. मैमंता मन मारि रे, घट ही मांहै घेरि ।
   जब ही चालै पीठि दे, अंकुस दे दे फेरि । -वही- मन को अंग - सा. 19
6. कोई एक हरिजन उबरै जिनि सुमिरया निश्चल राम ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद - 51
7. चित चंचल निश्चल की जै, तब राम रसायन पी जै ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद - 173

सहज समाधि है जिसमें ब्रह्मानन्द की अनुभूति होती है । तभी तो कबीर निश्चल होकर निर्भय हो राम नाम का गान कर रहे है ।[1] मन ही साधना का मूलाधार है । मन देने से ही मन मिलता है । मन उन्मन उस ब्रह्माण्ड की भाँति है जिसकी ज्योति के दर्शन आकाश में होते है ।[2]

यही मायासक्त मन जीव को जगत् से बाँधता है अत: सन्त नामदेव और कबीर की जगत् सम्बन्धी धारणा पर भी दृष्टि डालना उचित होगा ।

जगत्

समस्त नाम रूपात्मक प्रतीतियों का नाम जगत् या संसार है । जगत् की स्थिति माया के कारण ब्रह्म के ऊपर अध्यस्त की गई है ब्रह्म अधिष्ठान है जगत् अध्यस्त । अध्यस्त होने से जगत् मिथ्या है माया के द्वारा ही ब्रह्म जगत् रूप में प्रतिभासित हो रहा है ।

ब्रह्म नाम रूप मुक्त है तो जगत् नामरूपयुक्त । अत: शास्त्रों में जगत् की व्यावहारिक सत्ता मानी गई है । ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् की कोई अस्तित्व नहीं । अत: पारमार्थिक दृष्टि से जगत् मिथ्या है ।

इन परमार्थी सन्तों ने भी "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" इस सूत्र को संसार की अनित्यता पर अधिक बल देते हुए इन शब्दों द्वारा प्रकट किया - "मैला मलिता सब संसार, हरि निर्मल जाको अन्त न पार ।[3]

- -

1. कहै कबीर निश्चल भया निरभै पद गाया । क॰ग्रं॰ - पद- 188
2. मन दीयाँ मन पाइए मन बिन मन नहीं होइ ।
मन उनमन उस अंड ज्यू, अनल अकासा जोइ । क॰ग्रं॰ - मन को अंग-सा॰ 9
3. क- मैला मलिता सब संसार । हरि निरमल जाको अन्त न पार ।
स॰ ना॰ हि॰ प॰ पद-121
ख- मैला मलता यहु संसार । इस हरि निर्मल जाका अन्त न पार ।
कबीर ग्रन्था॰ - परिशिष्ट - पद- 168
ग- यहु संसार सकल है मैला, राम कहै ते सूचा -
- वही - पद- 129

सन्त नामदेव और कबीर स्थावरजंगम कीट पतंगों में व्याप्त उस ब्रह्म की अनुभूति कर उस विश्व स्वरूप ब्रह्म या विश्वात्मा का वर्णन करते है और अनेक पदों में अनेक उपमानों व दृष्टान्तों द्वारा जगत् के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करते हैं।

<u>ईश्वर की इच्छा शक्ति का विकास</u>

सभी सन्त व भक्त जगत् को ईश्वर की इच्छा शक्ति का विकास मानते हैं।

नामदेव अन्तर्यामी, घट-घट व्यापी माधव को एक "सयाना माली" कह ब्रह्म-स्वरूप विश्व का वर्णन करते हैं। उस विश्वरूपी उद्यान का माली, अपनी इच्छा से कली कली को जोड़ता है अर्थात् सृष्टि का निर्माण करता है और अपनी इच्छानुसार उनको तोड़ता है। अर्थात् वही ब्रह्म सृष्टि का कार्य व कारण दोनों ही है। वही पानी, पवन व पावक है। वही पुरुष व वही नारी है वही चन्द्र, सूर्य, धरती, आकाश है। नामदेव उस सृष्टिकर्ता का दास है। उस ब्रह्म ने सत्य को छिपाकर इस सृष्टि को प्रारम्भ में किस रूप में रचा होगा ? यह उसकी माया है। इस सृष्टि का स्रष्टा वही एक मात्र सत्य है।[2]

- -

1. माधौ माली एक सयाना। अन्तरिगत रहै लुकाना।
आपे थाडी आपे माली, कली कली कर जोडै।
पाके काचे, काचे पाके, मनि मानै ते तोडै।
आपे पवन आप ही पाणी, आपे बरिषै मेहा।
आपे पुरिष नारि पुनि आपे, आपे नेह सनेहा।
आपे चन्द्र सूर पुनि आपे आपे धरनि आकासा
रचनहार विधि ऐसी रची है, प्रणवै नामदेव दासा।
स॰ ना॰ हि॰ प॰ = पद-110

2. आप मंता समाँ न परई, सांचो दारि अवर कछु भई।
पानी का चित्र पवन का थंभा, कौन उपाइ रच्यौ आरम्भा।
स॰ ना॰ हि॰ प॰ = पद- 42

मानों नामदेव के प्रश्न का उत्तर देती हुए कबीर की पंक्तियाँ उसे "गोविन्द की माया" कहती है ।

"भाने घड़े संवारे सोई

यहु गोब्यंद की माया ।[1]

कबीर भी नामदेव की भान्ति ब्रह्म को जगत् का कार्य-कारण मानते हुए कहते है कि उस ब्रह्म ने नाद बिन्दु की सहायता से इस सृष्टि का सृजन किया । वही गुरु तथा स्वयं ही शिष्य है । वही पूज्य व पूजा व पूजक है । वही गायक भी है वादक भी वही अपने कर्मों का फल भोगता है । वही आराध्य, आराधक व आराधना की सामग्री है । कबीर उस निराकार "रमिता राम" को ही अन्तिम सत्य व जग को मिथ्या कहते है ।[2] क्योंकि वही जगत् के अनेक रूप धारण करता है ।

इसी बात को जनमानस पर सुगमता से अंकित करने के लिए सन्त नामदेव और कबीर ने इस जगत् को "बाजीगर की बाजी" कहा है ।

नामदेव कहते है कि बाजीगर के डमरु बजाते ही उस खेल को देखने के लिए सारी दुनियाँ एकत्रित हुयी । यह जग एक तमाशा ही है । खेल समेट ने अर्थात् सृष्टि के प्रलय होने पर वही बाजीगर ब्रह्म अकेला रह जाता है।[3]

- -

1. माटी का चित्र पवन का थंभा, ब्यंद संजोगि उपाया
भाने घड़े संवारे सोई, यहु गोविन्द की माया ।
कबीर ग्रन्थावली – 249
2. नाद बिंद रंक इक खेला, आपै गुरु आप ही चेला ।
आपै मन्त्र आपै मंत्रेला, आपै पूजे आप पूजेला ।
आप गावै आप बजावै, अपना कीया आप ही पावै ।
आपै धूप दीप आरती, अपनी आप लगावै जाती
कहै कबीर विचारि करि, झूठा लोही चाम ।
जो या देही रहित है, सो है रमिता राम ।
कबीर ग्रन्था॰ बारहपदी रमैणी – पृ॰ 244
3. बाजीगर डंक बजाई, सब दुनी तमासै आई
बाजीगर खेल सकेला । तब आपै रहो अकेला । स॰ना॰हि॰प॰ = पद-72

नामदेव अपने को धन्य समझते है कि हरिभक्ति के कारण वे इस "बाजी" से अप्रभावित रहे । जन्म मरण ही तो बाजी है । वही बाजीगर सृष्टि भी है, और सूत्रधार भी अर्थात् इस सृष्टि के सूत्र का धारक या संचालक भी है ।[1] यह प्रपंच पर ब्रह्म की लीला है ।[2]

कबीर कहते है कि बाजीगर की बाजी के रहस्य को वही या उसके चेले जान सकते है । उसके भक्त इस जादूगर के जादू के खेल की ओर आँख उठाकर भी नही देखते । नौ मन के सूत से निर्मित माया जगत से ही मनुष्य आवागमन के चक्र में फँसता है । नौ मन सूत से यहाँ कवि का अभिप्राय पाँच विषय - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध तथा तीन गुण सत, रज, तम, तथा एक मन से है । केवल प्रभु नाम ही मुक्ति का उपाय है ।[3] अतः इस जगत् के पाश से छूटने के लिए इस संसार के बाजीगर को समझो ।[4]

जग की असारता

दोनों ने जगत् को ब्रह्म की इच्छा शक्ति का विकास कहते हुए उसे बाजीगर के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है कि यह जगत् मिथ्या है । संसार को क्षणिक, नश्वर, परिवर्तनशील, निस्सार मानकर दुखों का मूल कारण बताया है । इस संसार की असारता को अनेक नवीन व पुरातन उपमानों द्वारा समझाया है ।

---

1. बाजी रची आप बाजी रची ।
   मै आस ताकी जिन सूं बची ।।
   बाजी जामन बाजी मरनौ ।
   बाजी लागि रह्यौ है मना ।।
   बाजी मन में सोचि विचारि ।
   आपे सूत्र आपे सूत्रधारी । स॰ना॰हि॰प॰ = पद-40
2. यहु परपंचु पारब्रह्म की लीला । स॰ना॰हि॰प॰ - पद-150
3. बाजी की बाजीगर जानै, कै बाजीगर का चेरा ।
   चेरा कबहूं उझकि न देखै, चेरा अधिक चितेरा ।
   नौ मन सूत उरझि न सुरझै, जनमि जनमि उरझेरा ।
   कह कबीर एक राम भजहु रे, बहुरि न ह्वेगा फेरा । कबीर ग्रन्था-पद-238
4. बाजीगर संसार कबीरा, जानि ढारौ पासा । - वही - पद-240

यह संसार वासनामय है, उन आसक्तियों को मरकट की मुठ्ठी की भाँति छोड़ने का उपदेश इन सन्तों ने दिया है। बन्दर की बन्द मुठ्ठी ही उसके बन्धन का कारण होती है। वैसे ही आसक्तियाँ ही मनुष्य को संसार में बाँधे रखती है। इस सरल उदाहरण द्वारा नामदेव[1] और कबीर[2] ने इस बात को समझाया है।

नामदेव के शब्दों में यह संसार "हाट" है "मंडी बाजी" है जिसमें सब माया का ही सौदा करते हैं, उस आत्माराम को कोई नहीं पहचानता।[3] यहाँ सभी को अपने कर्मों के अनुसार ही फल मिलेगा। इस संसार रूपी हाट में, माया बाज़ार में मनुष्य मूर्ख की तरह अपना मूलधन ही गँवा देता है।[4]

कबीर भी इस संसार रूपी बाजार में कर्म का व्यापार करनेवालों को उन्हीं शब्दों में चेतावनी देते हैं। यदि मनुष्य सावधान नहीं हुआ तो मूर्ख की भाँति अपना मूलधन ही गंवायेगा। जो भक्त जन संसार की असारता को समझ लेते हैं वे इस माया से पराजित नहीं होते और भव-बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।[5]

---

1. मरकट मूठी छाँडिदे ज्यूं मुक्ति भैला रे।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 7।
2. निरभय होइन हरि भजे मन बौरा रे गह्यो न राम जहाज।
   मर्कट मुष्टी अनाज की मन बौरा रे लीनी हाथ पसारि। क॰ग्रं॰ पद-42
3. रामराई माया लाई। सब दुनियाँ सौदे आई।
   सब दुनिया सौदा कीन्हा। काहू आतमराम न चीन्हा।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद-72
4. यहु संसार हाट को लेखा, सब कोऊ बनीजहि आया।
   जिन जस लावा तिन तस पाया मूरख मूल गँवाया। -वही- पद-227
5. यहु संसार हाट करि जानूं, सबको वाणिजि आया।
   चेति सके सो चेतो रे भाई, मूरखि मूल गवाया॥
   जे जानि जाति जपै जग-जीवन तिनका ग्यानि न नासा।
   कहै कबीर वै कबहूं न हारे, जौनि न ढारे पासा॥
   कबीर ग्रन्थावली - पद - 235

सभी भक्तों व सन्तों ने मनुष्य जन्म को दुर्लभ माना है और इस शरीर की क्षणभंगुरता को नामदेव ने चार दिन का मेहमान व कच्चे घड़े के पानी[1], बालू के मन्दिर[2], तरु का पतित पात[3] आदि दृष्टान्तों द्वारा समझाया है ।

कबीर ने शरीर की क्षणिकता को समझाने के लिए सर्वाधिक सुन्दर उपमा अंजली के जल से दी है ।[4] इसके अतिरिक्त यह तन काँचा कुम्भ है[5], तन कागद का पुतला[6], कागद की गुड़िया[7] आदि उपमानों का भी प्रयोग किया है । इस संसार में शरीर का नाश मृत्यु निश्चित सत्य है ।[8] उनके "चितावणी कौ अंग" व "कालकौ अंग" आदि शीर्षकों के अन्तर्गत संकलित साखियों में नलिनी को सुवटा[9], सेमल फूल[10], टेसू का फूल आदि अनेक नवीन उपमानों द्वारा संसार की क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए "जग धन्धा रे" का नारा लगाया ।

- -

1. कुम्भ काँचो नीर भरीयो । बिनसतौं नहीं बार रे ।
   पाहुनो दिनच्यारि केरा । सुकृत राम संभारि रे ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद - 75
2. बालू के मन्दिर बिनसि जांहिगे । झूठे करहु पसारा रे नर ।-वही-पद-92
3. तरवर पात परे झरि,बिनसै सकल सरीर । - वही - पद-139
4. तन धन जीवन अंजुरी कौ पानी, जात न लागे बार ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद 313
5. - वही - चितावणी कौ अंग - साखी - 38, 39
6. मन रे तन कागद का पुतला ।
   वही - पद - 92
7. बिनसि जाइ कागद की गुड़िया -
   वही - पद-91
8. जगत चबीणा काल का कुछ मुख में कुछ गोद ।
   - वही - काल कौ अंग - सा.1
9. नलिनी के सुवटा की नाईं, जग सूं राचि रहै ।
   वही - पद - 310
10. यहु ऐसा संसार है जैसा सैंबल फूल ।
    दिन दस के व्यौहार कौ, झूठे रंगि न भूल ।
    - वही - चितावणी कौ अंग सा - 13

इस धन्धे के फन्द में पड़ा हुआ मनुष्य अन्धा है जो सच्चे आनन्द को नहीं पहचानता । नामदेव कहते है :-

"क्या करूँ जग देखत अंधा । तजि आनन्द विचारै धंधा ।[1]

तो कबीर के शब्दों में -

जग धन्धा रे जग धन्धा सब लोग न जाणै अंधा ।[2]

जग धन्धा है पर नामदेव पूरे विश्वास के साथ कहते है कि धन्धाकार हरि उनकी चिन्ता करनेवाले है :-

पर हरि धन्धाकार रुलेला, तेरी चिन्ता राम करेला ।[3]

इस संसार रुपी सागर को पार करने के लिए हरिनाम ही एकमात्र आधार है । नामदेव[4] और कबीर[5] ने उसी हरि नाम स्मरण का उपदेश दिया । हरिनाम के अतिरिक्त सभी माया मिथ्यावाद है ।[6] उनकी जगत सम्बन्धी धारणा का निष्कर्ष उन्हीं के शब्दों में है "सार तुम्हारा नाँव है, झूठा सब संसार" की उद्घोषणा कर नामदेव और कबीर दोनों ने ही सर्वत्र जगत को मिथ्या माना है । और इस असार संसार में निष्काम भाव से जीवन व्यतीत करते हुए हरि भक्ति का उपदेश दिया है । हरि भक्ति ही माया से तरने का उपाय बताया ।

इन हरि भक्तों ने माया और ब्रह्म के अद्वैत सम्बन्ध को प्रतिपादन किया ।

---

1. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 47
2. कबीर ग्रन्थावली - पद- 176
3. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद-33
4. संसार सागर विषम तिरणी । निपट ऊँडी धार ।
   सुरति निरति का बांधि बेरा । उतरिये लै पार ।।
   - वही - पद - 237
5. संसार सागर विषम तिरणी सुमिरे लै हरि नाँव ।
   कबीर ग्रन्थावली पद - 189
6. धन धंधा व्योहार सब, माया मिथ्यावाद ।
   पाणी नीर हलूर ज्यूं हरि नाँव बिना अपवाद ।
   कबीर ग्रन्थावली पद - 296

माया और ब्रह्म का सम्बन्ध

चेतन पुरुष से अचेतन माया की उत्पत्ति को शंकराचार्य व अन्य दार्शनिकों ने विवर्तवाद और प्रतिबिम्बवाद द्वारा समझाया है ।

माया को ब्रह्म का विवर्तमात्र कहा है । अतात्त्विक परिवर्तन को विवर्त एवं तात्त्विक परिवर्तन को विकार कहते हैं ।[1] विवर्त अर्थात् वस्तु का विशेष रूप । जैसे जल का एक विशेष रूप तरंग, फेन और बुदबुदे होते है । तात्त्विक रूप से उनमें कोई अन्तर नहीं रहता । वैसे ही इन सन्तों ने माया व ब्रह्म के सम्बन्ध को जल-तरंग, कनक-कुण्डल, आदि उदाहरणों द्वारा समझाया है ।

नामदेव इस प्रपंच को परब्रह्म की लीला कहते हुए उसके अभिन्न सम्बन्ध को जल, तरंग, फेन बुदबुदे के द्वारा समझाते है ।[2]

नामदेव के मराठी अभंगों मे इस सम्बन्ध को बड़े स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किया है । वे कहते है कि एक ही तत्त्व एकाकाररूप में सारे संसार में व्याप्त है । वही सृष्टि का संचालक है । उसी एक तत्त्व को सम्पूर्ण सृष्टि में देखो उससे भिन्न प्रतीत होनेवाला विश्व मायिक है अतः मिथ्या है । यह वेदों के प्रमाण के आधार नामदेव कहते है कि ब्रह्म भेदाभेद से परे है ।[3]

कबीर के शब्दों में :-

"सब घटि अन्तरि तू ही व्यापक धरे सरूपै सोई ।

---

1. ब्रह्म शांकर भाष्य = 2/1/7
2. जल तरंग अरु फेन बुदबुद, जल ते भिन्न न होई ।
   इहु परपंचु पारब्रह्म की लीला बिचरत आन न होई ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 150
3. एक तत्त्व एकाकार सर्व देखी । एक तो नैमिषीसकला जनी ।
   ऐसे ब्रह्म पहा सर्व एक । न लगे विवेक करणें काही ।
   मिथ्या है इंबर माया मथितार्थ । हरि हाचि स्वार्थ केली करी ।
   नामा म्हणे समर्थ बोलिला तो वेद । नाहीं भेदाभेद ब्रह्मपणीं ।
   नामदेव गाथा - महाराष्ट्र शासन प्रति - अभंग - 332

वही एक तत्व अनेक रूप धारण करता है वह मायिक रूप है ।[1] अव्यक्त ब्रह्म से उत्पन्न पंचतत्वों से शरीर व सृष्टि का निर्माण होता है वियोग होने पर वे सब तत्व उस ब्रह्म में जल में कुम्भ, अथवा कुम्भ में जल की भांति कुम्भ के फूटने पर एक तत्व रूप जल ही शेष रहता है वैसे ही माया व ब्रह्म का सम्बन्ध अभिन्न है ।

ब्रह्म और जीव के समान ब्रह्म और सृष्टि में कोई भेद नहीं होता । यह त्रिगुणात्मिका मायात्मक सृष्टि ब्रह्म का प्रतिबिम्बस्वरूप है । इसीलिए सृष्टि और ब्रह्म में भी अद्वैत होता है ।[2] संशय या भ्रम मिटने पर उस अद्वैत की अनुभूति होती है । अर्थात् दर्पण के प्रतिबिम्ब की भांति इस संसार में ब्रह्म ही प्रतिबिम्बित हो रहा है ।

इस तरह तात्विक दृष्टि से सन्त नामदेव और कबीर इस सम्बन्ध को अद्वैत मानते हैं ।

- -

1. सब घटि अन्तरि तू ही व्यापक, धरै सरूपै सोई ।
माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कूं गरबांना ।
कबीर ग्रन्थावली - पद - 55

[illegible] पंचतत्त अविगत थै उतपनां, एकै किया निवासा ।
बिछुरे तत फिरि सहजि समाना, रेख रही नहीं आसा ।
जल मैं कुम्भ, कुंभ मैं जल है बाहरि भीतरि पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथ्या गियानी ।
वही - पद-44

2. ज्यूं दरपन प्रतिब्यंब देखिए, आप दवांसूं सोई ।
संसौ मिट्यौ एक कौ एकै, महाप्रलै जब होई ।
कबीर ग्रन्थावली - पद - 54

निष्कर्ष

इस विवेचन के उपरान्त उनकी माया विषयक मान्यता कैसी ही सिद्ध होती है ।

मायावाद की परम्परा के आलोक में सन्त नामदेव और सन्त कबीर के काव्य का अवलोकन कर इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि इन सन्तों ने अपनी मौलिक प्रतिभा, सारग्राही प्रवृत्ति और समन्वयवादी वृत्ति से इस शास्त्रीय तत्व को सहजीकृत बनाया । उन्होंने उदाहरण और व्याख्या के लिए प्राचीन शास्त्रसम्मत पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करते हुए भी उसे जन मानस के लिए सुलभ बनाया ।

तुलनात्मक दृष्टि से दोनों की माया सम्बन्धी धारणा में परम्परागत साम्य ही दृष्टिगोचर होता है ।